

## अध्याय ४७



पुनर्जन्म : वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा ( सर्प व मेंढक ) की वार्त्ता।

गत अध्याय में बाबा द्वारा बताई गई दो बकरों के पूर्व जन्मों की वार्त्ता थी। इस अध्याय में कुछ और भी पूर्व जन्मों की स्मृतियों का वर्णन किया जाता है। प्रस्तुत कथा वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा के सम्बन्ध में है।

### प्रस्तावना

हे त्रिगुणातीत ज्ञानावतार श्रीसाई! तुम्हारी मूर्ति कितनी भव्य और सुन्दर है। हे अन्तर्यामिन्! तुम्हारे श्रीमुख की आभा धन्य है। उसका क्षणमात्र भी अवलोकन करने से पूर्व-जन्मों के समस्त दुःखों का नाश होकर सुख का द्वार खुल जाता है। परन्तु हे मेरे प्यारे श्री साई! यदि तुम अपने स्वभाववश ही कुछ कृपाकटाक्ष करो, तभी इसकी कुछ आशा हो सकती है। तुम्हारी दृष्टिमात्र से ही हमारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और हमें आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। गंगा में स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गंगामाई भी संतों के आगमन की सदैव उत्सुकतापूर्वक राह देखा करती हैं कि वे कब पधारें और मुझे अपनी चरण-रज से पावन करें। श्री साई तो संत-चूड़ामणि हैं। अब उनके द्वारा ही हृदय पवित्र बनाने वाली यह कथा सुनो।

### सर्प और मेंढक

श्री साईबाबा ने कहा - “एक दिन प्रातःकाल ८ बजे जलपान के पश्चात् मैं घूमने निकला। चलते-चलते मैं एक छोटीसी नदी के किनारे पहुँचा। मैं अधिक थक चुका था, इस कारण वहाँ बैठकर कुछ विश्राम

करने लगा। कुछ देर के पश्चात् ही मैंने हाथ-पैर धोये और स्नान किया। तब कहीं मेरी थकावट दूर हुई और मुझे कुछ विश्रान्ति का अनुभव होने लगा। उस स्थान से एक पगडंडी और बैलगाड़ी के जाने का मार्ग था, जिसके दोनों ओर सघन वृक्ष थे। मलय-बयार मंद-मंद बह रही थी। मैं चिलम भर ही रहा था कि इतने में मेरे कानों में एक मेंढक के बुरी तरह टराने की ध्वनि पड़ी। मैं चकमक सुलगा ही रहा था कि इतने में एक यात्री वहाँ आया और मेरे समीप आकर उसने मुझे प्रणाम किया और घर पर पधारकर भोजन तथा विश्राम करने का आग्रह करने लगा। उसने चिलम सुलगा कर मेरी ओर पीने के लिए बढ़ाई। मेंढक के टराने की ध्वनि सुनकर वह उसका रहस्य जानने के लिये उत्सुक हो उठा। मैंने उसे बतलाया कि एक मेंढक कष्ट में है, जो अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल भोग रहा है। **पूर्वजन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भोगना पड़ता है, अतः अब उसका चिल्लाना व्यर्थ है।** एक कश लेकर उसने चिलम मेरी ओर बढ़ाई। “थोड़ा देखूँ तो, आखिर बात क्या है?” ऐसा कहकर वह उधर जाने लगा। मैंने उसे बतलाया कि एक बड़े साँप ने एक मेंढक को मुँह में दबा लिया है, इस कारण वह चिल्ला रहा है। दोनों ही पूर्वजन्म में बड़े दुष्ट थे और अब इस शरीर में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। आगन्तुक ने घटना-स्थल पर जाकर देखा कि सचमुच एक बड़े सर्प ने एक बड़े मेंढक को मुँह में दबा रखा है।

उसने वापस आकर मुझे बताया कि लगभग घड़ी-दो घड़ी में ही साँप मेंढक को निगल जाएगा। मैंने कहा - “नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, मैं उसका संरक्षक पिता हूँ और इस समय यहाँ उपस्थित हूँ। फिर सर्प की क्या सामर्थ्य है कि मेंढक को निगल जाए? क्या मैं व्यर्थ ही यहाँ बैठा हूँ? देखो, मैं अभी उसकी किस प्रकार रक्षा करता हूँ।” दुबारा चिलम पीने के पश्चात् हम लोग उस स्थान पर गए। आगन्तुक डरने लगा और उसने मुझे आगे बढ़ने से रोका कि कहीं सर्प आक्रमण न कर दे। मैं उसकी बात की उपेक्षा कर आगे बढ़ा और

दोनों से कहने लगा कि, “अरे वीरभद्रप्पा! क्या तुम्हारे शत्रु को पर्याप्त फल नहीं मिल चुका है, जो उसे मेंढक की और तुम्हें यह सर्प की योनि प्राप्त हुई है? अरे! अब तो अपना वैमनस्य छोड़ो। यह बड़ी लज्जाजनक बात है। अब तो इस ईर्ष्या को त्यागो और शांति से रहो।” इन शब्दों को सुनकर सर्प ने मेंढक को छोड़ दिया और शीघ्र ही नदी में लुप्त हो गया। मेंढक भी कूदकर भागा और झाड़ियों में जा छिपा।

उस यात्री को बड़ा अचम्भा हुआ। उसकी समझ में न आया कि बाबा के शब्दों को सुनकर साँप ने मेंढक को क्यों छोड़ दिया और वीरभद्रप्पा व चैनबसाप्पा कौन थे? उनके वैमनस्य का कारण क्या था? इस प्रकार के विचार उसके मन में उठने लगे। मैं उसके साथ उसी वृक्ष के नीचे लौट आया और धूम्रपान करने के पश्चात् उसे इसका रहस्य सुनाने लगा -

“मेरे निवासस्थान से लगभग ४-५ मील की दूरी पर एक पवित्र स्थान था, जहाँ महादेव का एक मंदिर था। मंदिर अत्यन्त जीण-शीर्ण स्थिति में था, सो वहाँ के निवासियों ने उसका जीर्णोद्धार करने के हेतु कुछ चन्दा इकट्ठा किया। पर्याप्त धन एकत्रित हो गया और वहाँ नित्य पूजन की व्यवस्था कर मंदिर के निर्माण की योजनाएँ तैयार की गईं। एक धनाढ्य व्यक्ति को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर उसको समस्त कार्य की देखभाल का भार सौंप दिया गया। उसको कार्य, व्यय आदि का यथोचित विवरण रखकर ईमानदारी से सब कार्य करना था। सेठ तो एक उच्च कोटि का कंजूस था। उसने मरम्मत में अत्यन्त अल्पराशि व्यय की, इस कारण मंदिर का जीर्णोद्धार भी उसी अनुपात में हुआ। उसने सब राशि व्यय कर दी तथा कुछ अंश स्वयं हड़प लिया और उसने अपनी गाँठ से एक पाई भी व्यय न की। उसकी वाणी अधिक रसीली थी, इसलिये उसने लोगों को किसी प्रकार समझा-बुझा लिया और कार्य पूर्ववत् ही अधूरा रह गया। लोग फिर संगठित होकर उसके पास जाकर कहने लगे- सेठसाहेब! कृपया कार्य शीघ्र पूर्ण कीजिये। आपके प्रयत्न के अभाव में यह कार्य पूर्ण होना कदापि संभव नहीं। अतः आप पुनः योजना बनाईये। हम और भी चन्दा आपको वसूल

करके देंगे। लोगों ने पुनः चन्दा एकत्रित कर सेठ को दे दिया। उसने रुपये तो ले लिये, परन्तु पूर्ववत् ही शांत बैठा रहा। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी स्त्री को भगवान् शंकर ने स्वप्न दिया कि, उठो और मंदिर पर कलश चढ़ाओ। जो कुछ भी तुम इस कार्य में व्यय करोगी, मैं उसका सौ गुना अधिक तुम्हें दूँगा। उसने यह स्वप्न अपने पति को सुना दिया। सेठ भयभीत होकर सोचने लगा कि यह कार्य तो ज्यादा रुपये खर्च कराने वाला है इसलिये उसने यह बात हँसकर टाल दी कि यह तो एक निरा स्वप्न ही है और उस पर भी कहीं विश्वास किया जा सकता है? यदि ऐसा होता तो महादेव मेरे समक्ष ही प्रगट होकर यह बात मुझसे न कह देते? मैं क्या तुमसे अधिक दूर था? यह स्वप्न शुभदायक नहीं। यह तो पति-पत्नी के सम्बन्ध बिगाड़ने वाला है। इसलिये तुम बिल्कुल शांत रहो। भगवान् को ऐसे द्रव्य की आवश्यकता ही कहाँ, जो दानियों की इच्छा के विरुद्ध एकत्र किया गया हो। वे तो सदैव प्रेम के भूखे हैं तथा प्रेम और भक्तिपूर्वक दिये गए एक तुच्छ ताँबे का सिक्का भी सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। महादेव ने पुनः सेठानी को स्वप्न में कह दिया कि तुम अपने पति की व्यर्थ की बातों और उनके पास संचित धन की ओर ध्यान न दो और न उनसे मंदिर बनवाने के लिए आग्रह ही करो। मैं तो तुम्हारे प्रेम और भक्ति का ही भूखा हूँ। जो कुछ भी तुम्हारी व्यय करने की इच्छा हो, सो अपने पास से करो। उसने अपने पति से विचार-विनियम करके अपने पिता से प्राप्त आभूषणों को विक्रय करने का निश्चय किया। तब कृपण सेठ अशान्त हो उठा। इस बार उसने भगवान् को भी धोखा देने की ठान ली। उसने कौड़ी-मोल केवल एक हजार रुपयों में ही अपनी पत्नी के समस्त आभूषण स्वयं खरीद डाले और एक बंजर भूमि का भाग मंदिर के निमित्त लगा दिया, जिसे उसकी पत्नी ने भी चुपचाप स्वीकार कर लिया। सेठ ने जो भूमि दी, वह उसकी स्वयं की न थी, वरन् एक निर्धन स्त्री 'दुबकी' की थी, जो इसके यहाँ दो सौ रुपयों में गिरवी रखी हुई थी। दीर्घकाल तक वह ऋण चुकाकर उसे वापस न ले सकी, इसलिये उस धूर्त कृपण ने अपनी स्त्री, 'दुबकी' और भगवान् को

धोखा दे दिया। भूमि पथरीली होने के कारण उसमें उत्तम ऋतु में भी कोई पैदावार न होती थी। इस प्रकार यह लेन-देन समाप्त हुआ। भूमि उस मंदिर के पुजारी को दे दी गई, जो उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।”

कुछ समय के पश्चात् एक विचित्र घटना हुई। एक दिन बहुत जोरों से झंझावात आया और अतिवृष्टि हुई। उस कृपण के घर पर बिजली गिरी और फलस्वरूप पति-पत्नी दोनों की मृत्यु हो गई। दुबकी ने भी अंतिम श्वास छोड़ दी। अगले जन्म में वह कृपण मथुरा के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ और उसका नाम ‘वीरभद्रप्पा’ रखा गया। उसकी धर्मपत्नी उस मंदिर के पुजारी के घर कन्या होकर उत्पन्न हुई और उसका नाम ‘गौरी’ रखा गया। ‘दुबकी’ पुरुष बनकर मंदिर के गुरव (सेवक) वंश में पैदा हुई और उसका नाम चैनबसाप्पा रखा गया। पुजारी मेरा मित्र था और बहुधा मेरे पास आता जाता, वार्तालाप करता और मेरे साथ चिलम पिया करता था। उसकी पुत्री गौरी भी मेरी भक्त थी। वह दिनोंदिन सयानी होती जा रही थी, जिससे उसका पिता भी उसके हाथ पीले करने की चिंता में रहता था। मैंने उससे कहा कि चिंता की कोई आवश्यकता नहीं, वर स्वयं तुम्हारे घर लड़की की खोज में आ जाएगा। कुछ दिनों के पश्चात् ही उसी की जाति का वीरभद्रप्पा नामक एक युवक भिक्षा माँगते-माँगते उसके घर पहुँचा। मेरी सम्मति से गौरी का विवाह उसके साथ सम्पन्न हो गया। पहले तो वह मेरा भक्त था, किन्तु अब वह कृतघ्न बन गया। इस नूतन जन्म में भी उसकी धन-तृष्णा नष्ट न हुई। उसने मुझसे कोई उद्योग धंधा सुझाने को कहा, क्योंकि इस समय वह वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहा था। तभी एक विचित्र घटना हुई। अचानक ही प्रत्येक वस्तुओं के भाव ऊँचे चढ़ गए। गौरी के भाग्य से जमीन की माँग अधिक होने लगी और समस्त भूमि एक लाख रुपयों में, आभूषणों के मूल्य से १०० गुना अधिक मूल्य में बिक गई। ऐसा निर्णय हुआ कि ५० हजार रुपये नगद और २००० रुपये प्रतिवर्ष किश्त पर चुकता कर दिये जाएँगे। सबको यह लेनदेन स्वीकार था, परन्तु धन में हिस्से के कारण उनमें परस्पर विवाद होने लगा। वे परामर्श लेने मेरे पास आए और

मैंने कहा कि यह भूमि तो भगवान् की है, जो पुजारी को सौंपी गई थी। इसकी स्वामिनी 'गौरी' ही है, और एक पैसा भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खर्च करना उचित नहीं तथा उसके पति का इस पर कोई अधिकार नहीं है। मेरे निर्णय को सुनकर वीरभद्रप्पा मुझसे क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम गौरी को फुसलाकर उसका धन हड़पना चाहते हो। इन शब्दों को सुनकर मैं भगवत् नाम लेकर चुप बैठ गया। वीरभद्र ने अपनी स्त्री को पीटा भी। गौरी ने दोपहर के समय आकर मुझसे कहा कि आप उन लोगों के कहने का बुरा न मानें। मैं तो आपकी लड़की हूँ। मुझ पर कृपादृष्टि ही रखें। वह इस प्रकार मेरी शरण में आई तो मैंने उसे वचन दे दिया कि **मैं सात समुद्र पार भी तुम्हारी रक्षा करूँगा**। तब उस रात्रि को गौरी को एक दृष्टांत हुआ। महादेव ने आकर कहा कि यह सब सम्पत्ति तुम्हारी ही है और इसमें से किसी को कुछ न दो। चैनबसाप्पा की सलाह से कुछ राशि मंदिर के कार्य के लिये खर्च करो। यदि और किसी भी कार्य में तुम्हें खर्च करने की इच्छा हो तो मस्जिद में जाकर बाबा (स्वयं मैं) के परामर्श से करो। गौरी ने अपना दृष्टांत मुझे सुनाया और मैंने इस विषय में उचित सलाह भी दी। मैंने उससे कहा कि मूलधन तो तुम स्वयं ले लो और ब्याज की आधी रकम चैनबसाप्पा को दे दो। वीरभद्र का इसमें कोई संबन्ध नहीं है। जब मैं यह बात कर ही रहा था, वीरभद्र और चैनबसाप्पा दोनों ही वहाँ झगड़ते हुए आए। मैंने दोनों को शांत करने का प्रयत्न किया तथा गौरी को हुआ महादेव का स्वप्न भी सुनाया। वीरभद्र क्रोध से उन्मत्त हो गया और चैनबसाप्पा को टुकड़े-टुकड़े कर मार डालने की धमकी देने लगा। चैनबसाप्पा बड़ा डरपोक था। वह मेरे पैर पकड़कर रक्षा की प्रार्थना करने लगा। तब मैंने शत्रु से उसका छुटकारा करा दिया। कुछ समय पश्चात् ही दोनों की मृत्यु हो गई। वीरभद्र सर्प बना और चैनबसाप्पा मेंढक। चैनबसाप्पा की पुकार सुनकर और अपने पूर्व वचन की स्मृति करके यहाँ आया और इस तरह से उसकी रक्षा कर मैंने अपने वचन पूर्ण किये। **संकट के**

समय भगवान् दौड़कर अपने भक्त के पास जाते हैं। उसने मुझे यहाँ भेजकर चैनबसाप्पा की रक्षा कराई। यह सब ईश्वरीय लीला ही है।”

### शिक्षा

इस कथा की यही शिक्षा है कि जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, जब तक कि भोग पूर्ण नहीं होता। पिछला ऋण और अन्य लोगों के साथ लेन-देन का व्यवहार जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक छुटकारा भी संभव नहीं है। धनतृष्णा मनुष्य का पतन कर देती है और अन्त में इससे ही वह विनाश को प्राप्त होता है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥